॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हे प्रभु! तू कल्याण करने वाला है। तूने ऋषि-मुनियों का कल्याण किया है। विधाता! तू हमारा ही कल्याण कर। तू हमें भी यहाँ से ले चल, जहाँ एक-दूसरे की त्रुटि हो, एक-दूसरे पर क्रोध न्यौछावर किया जाता हो, यह संसार मुझे नहीं चाहिए। मुझे तो वह कजली वन चाहिए, जिस कजली वन में सिंह दहाड़ते हो। जहाँ हाथी ध्वनियाँ कर रहे हों। जहाँ विधाता! नाना सिंह ध्वनियाँ करते-करते उस अमूल्य आत्मा के द्वारा, वेदों का श्रवण करने वाले हों। आज के मानव से ये सिंह ऊँचे हैं जो ऋषि-मुनियों की वार्ता का पान करते हैं।

हे प्रभु! मेरा अङ्ग-प्रत्यंग सर्वत्र इन्द्रियाँ यद्यमय हों। मेरे जीवन का एक-एक सङ्कल्प यज्ञमय हो। आज मैं विकल्पों में नहीं जाना चाहता, जो जीवन को नष्ट कर दें। परन्तु प्रभु! मुझे अपने सङ्कल्पों को यज्ञमय बनाने के लिए सहायता की आवश्यकता है। जैसे यज्ञशाला को रचाने के लिए यज्ञमान की आवश्यकता है। जैसे यज्ञशाला को रचाने के लिए यज्ञमान को ब्रह्मा की आवश्यकता है। इसी प्रकार आज अपने जीवन को यज्ञमय बनाने के लिए किसी की सहायता लेना चाहता हूँ। परन्तु मुझे कोई ऐसा प्रतीत नहीं देता जिसकी में सहायता लूँ, मुझे तो केवल प्रभु ही ऐसा प्रतीत देता है जिसका यह संसार यज्ञ है। मैं उस परमपिता परमात्मा को अपना स्वामी बनाना चाहता हूँ। मैं किंचित् बुद्धि वाला एक यज्ञमान बनना चाहता हूँ।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अंक : 532 कुल पृष्ठ संख्या समग्र अंक : 607
वर्ष : 45 44 समग्र वर्ष : 51

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1. प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	3
2. अनुक्रम		4
3. महाराजा दिलीप का तप	पूज्यपाद-गुरुदेव	5-21
4. महर्षि वशिष्ठ मुनि व माता अरुन्धति की यज्ञों पर चर्चा	पूज्यपाद-गुरुदेव	22-36
5. Creation, and the Institution of National Order	Pujyapad-Gurudev	37-38
6. ऋषियों के उद्‌गार		39
7. दान, पुस्तकों की सूची व प्राप्ति के स्थान तथा सूचना इत्यादि		40-42

चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से एवम् पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (पूर्व शृङ्गी ऋषि जी) के शुभ आशीर्वाद से प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग का आयोजन लाक्षागृह बरनावा में श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय के प्रांगण में दिनाँक 26 फरवरी, 2017 से 5 मार्च, 2017 तक बड़े हर्ष एवम् उल्लास के साथ आयोजित किया जा रहा है जिसमें आप सब अपने सम्बन्धियों व मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

श्री गाँधी धाम समिति (पञ्जी.)

website : www.shringirishi.in
Email : contact@shringirishi.in

।। ओ३म् ।।

महाराजा दिलीप का तप

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गा रहा है। क्योंकि जितना भी अमूल्य हमें दृष्टिपात आने वाला जगत् है, कहीं तक मानव की दृष्टि चली जाएँ कहीं तक भी अन्तःर्मुखी हो करके उस परमपिता परमात्मा की महती को निहारता रहता है तो उसमें वह चेतना व अनुपम महिमा हमें दृष्टिपात होती रहती हैं, जिस चेतना में बद्ध रहने वाला वह अनुपम प्रभु कहा जाता है। जिसकी महिमा का गुणगान परम्परागतों से ही ऋषि-मुनि अपने में पान करते रहे हैं।

मानव के हृदय की पिपासा

प्रत्येक मानव अपने में आभायित रहा है और नाना प्रकार के रूपों में रत्त होने वाला यह मानवीयत्व एक महानता का प्रतीक बना हुआ है, जिस महानता के लिए प्रत्येक मानव के हृदय में पिपासा बनी रहती है और वह सदैव यह चाहता है कि मैं महान् बनूँ। मेरी महानता का दिग्दर्शन होता रहे। क्योंकि उसके मनों की जो आकांक्षा बनी हुई है, उसके मूल में वह चेतना अपने में रत्त हो रही है और वह जो व्यापकवाद और संकीर्णता में जगत विद्यमान है उसको वह जानना चाहता है और उसके हृदय में महानता की एक ज्योति ज्योतिवान रहती है। जिसको वह सदैव यह चाहता है कि मेरी मानवता मेरा हृदय उच्च श्रेणी वाला

बन करके और इस सागर से हम पार हो जाएँ। जिस सागर की चर्चाएँ प्रत्येक मानव पर परम्परागतों से ही अपने में गान-रूपों में ही गाता रहता है और यह अनुभव कराता रहता है 'गायं परमं धनं ब्रह्म ज्योतिः। गाय भी एक धन है परन्तु ब्रह्मज्योति है, ये ज्योति के ऊपर प्रत्येक मानव का हृदय जिस ज्योति के ऊपर यह ब्रह्माण्ड निहित हो रहा है। वही ज्योति ज्योतिवान हो करके इस संसार को भिन्न-भिन प्रकार के रूपों में परणित कर रही है। भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वरूप इस ब्रह्माण्ड का हमारे को दृष्टिपात आता रहता है।

आज हमारा वेद मन्त्र हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है और प्रेरणा वह यह है कि प्रत्येक मानव को अपनी मानवता को जान करके इस सागर से पार होने का प्रयास करना है। जिस मानव के हृदय में यह विचारधारा रहती है कि मैं पार हेाना चाहता हूँ। मैं अपने जीवन में मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता हूँ वह मुझे कहीं प्राप्त हो जाए तो मेरा हृदय पवित्र बन जाए और मैं मोक्ष का गामी बन करके मैं अपने उस परमानन्द को प्राप्त करने लगूँ जिस परमानन्द के लिए मानव उत्सुक व अपने में रत्त हो रहा है और यह विचार रहा है कि मेरा अन्तर्हृदय पवित्रता की वेदी पर निहित हो जाना चाहिए। परन्तु जब यह आकांक्षा लगी हुई है। यह विचारधारा उसमें रत्त हो रही है तो उन्हीं विचारों को लेकर के मानव को ऊँची-से-ऊँची उड़ान उड़नी चाहिए। जो मानव संसार में ऊँची उड़ान उड़ता रहता है, वह मानवीयता के क्षेत्र में अपने को शान्त करके इस परमपिता परमात्मा के ब्रह्माण्ड के शान्त जगत में ही प्रायः दृष्टिपात करता रहा है। परन्तु आज तुम्हें विशेष चर्चा नहीं केवल यह उच्चारण करना है कि प्रत्येक मानव के हृदय में एक मानवता का प्रदर्शन होना चाहिए। जिस मानवता का प्रदर्शन ही मानव के जीवन का अभ्युत्थान वह उत्थान गामी करा देता है।

आओ मेरे प्यारे! विचार हम क्या दे रहे थे? हम नाना प्रकार के यज्ञों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। अपनी

मानवीयता का दर्शन करना भी मानव के लिए चिन्तन करना बहुत अनिवार्य है। परन्तु इसी प्रकार, हम अपने जीवन को एक महान् मननशील वेदी पर ले जाना चाहते हैं। **मानवता के दर्शन करते हुए हम मौन अवस्था को प्राप्त होते चले जाएँ।** क्योंकि प्रत्येक वस्तु संसार में मौन के रूप में परणित होती है।

मानवीय गति

आज का विचारा हमारा क्या कह रहा है? आज का विचार कह रहा है परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए सागर से पार हो जाना चाहिए परन्तु प्रत्येक मानव के हृदय में यह आशंका लगी रहतीं है कि हमारा हृदय आनन्दित हो जाना चाहिए। परन्तु मैं तुम्हें आनन्दित होने की विवेचना में नहीं ले जाना चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें उसी आसन पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ ब्रह्म ऋषियों द्वारा ऋषियों को प्रायः चुनौती दी जाती है, जहाँ रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण अपनी-अपनी धाराओं में वर्णित किया जाता है उसका शोधन किया जाता है तो एक महानता का प्रतीक महानता की अमूल्य ज्योति कही जाती है। मैं विचार देता हुआ दूर न चला जाऊँ। **विचार यह दे रहा था कि संसार की प्रत्येक आभा में अपने जीवन को ऊँचा बनाना, ऊर्ध्वा में गति कराना सर्वत्र उस महाप्रभु की महानता का दिग्दर्शन है।** हम कौन-से क्षेत्रों की चर्चा कर रहे हैं? हमारा वाक्य यह कह रहा था कि प्रत्येक मानव को अपने अन्तर्हृदय, अन्तरात्मा के लिए सदैव मौन रह करके क्रियाकलाप में रत्त रहना चाहिए। जिससे मानव के हृदय में एक महान ज्योति जागरूप हो करके और वही ज्योति संसार के विराट स्वरूप को अपने में धारण कर लेती है। जब वह ज्योति इस संसार को अपने में धारण करती है, तो यह संसार का अनुपम धारावाही 'जगत्याम् जगत् ब्रह्मवाचा!' यह जगत् एक अपूर्व कहलाता है। जब मुनिवरो! ऋषियों ने यह प्रार्थना की, याचना करने के पश्चात् एक आभा का अनुपम एक जन्म होता है जिस

जन्म की धारा को लेकर ही उस परमपिता परमात्मा का दिग्दर्शन उसकी दीर्घता हमारे हृदयों में प्रवेश कर जाती है। जिसको हम एक मानवीय गति कहते हैं, जिसको विज्ञान में ऊर्ध्वा के रूप में पूर्ण रूपेण किया करते हैं।

अनुपम अनुभूति

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की चर्चाएँ चल रही थीं। वशिष्ठं ब्रह्मेः वाचं ब्रह्माः गोतम् ब्रह्मवाः वसुन्धरा वायु गताः। अपने में रत्त रहने वाला हृदयग्राही अपने को ऊँचा बनाता हुआ सागर की प्रतिभा को अपने में मापने का प्रयास करता रहता है। तो विचार है हम मौन रह करके उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को अपने में मापने के लिए आते हैं और वह माप करके चले जाते हैं। परन्तु अपना दृष्टिकोण अपनी धीमी-धीमी जो ध्वनि है उसे वे त्याग देते हैं उसे वे अपने में नहीं आने देते। परन्तु वह एक अनुपम धारा बन करके मानव के अन्तर्हृदय में विद्यमान हो जाती है तो हृदय को विचारने के लिए हम यह चिन्तन करने आये हैं प्रत्येक मानव के हृदय में भिन्न-भिन्न प्रकार चिन्ताओं का चिन्तनीय विषयों का जन्म होता है। जिस को अपने में धारण करके वह मोक्ष आवृत्तियों में प्राप्त होता हुआ अपने को जान करके ही पार होने का प्रयास करता है। मैं उच्चारण कर रहा था कुछ महापुरुषों की चर्चाएँ। कुछ उस रचना में प्रवेश करना चाहता हूँ जिस चेतना में जाने के पश्चात् मेरा जीवन कृतज्ञ बन जाता है। मेरे जीवन में एक आनन्द की प्रतिभा अनुभूति आने लगे। **वह अनुपम अनुभूति कहलाती है जो मानव के हृदयों को पवित्रतम बना देती है और पवित्र आभा में परणित कर देती है।** प्रत्येक मानव का हृदय अपने हृदय में हृदयग्राही हो करके उसका प्रदर्शन होना चाहिए। जिससे जीवन की एक अनुपम, अनुधाराएँ अपने से मानव से बाह्य जगत् में प्रवेश न करें। वह आन्तरिक जगत् में ही एक आनन्दमयी धारा को बना करके वे सूक्ष्म धाराओं का, सूक्ष्म अंकुरों का अपने में पान करता रहता है।

महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज की कुछ चर्चाएँ हो रही थीं। महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपने में प्रकाश देते हुए दृष्टिपात किया। ब्रह्मचारी विद्यमान हैं और उन्होंने कहा देवो वाचाः वसु सम्भवा सम्भवा दिव्यं गतं ब्रह्मा' मानव की एक धारा में रत्त रहने वाला वह एक अनुपम की धारा अपनाता हुआ सागर के उस छोर पर चला जाता है जहाँ एक अनुपम चिन्तन करने का एक समूह हमें प्राप्त होता रहता है। तो महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ जहाँ महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अमृतम्! माता अरुन्धति दोनों का परस्पर शास्त्रार्थ होता रहता था। दोनों की विचारधाराएँ एक अनुपम धारा में परणित होने वाली एक अनुपमता कहलाती है। जब वशिष्ठ मुनि महाराज नाना ऋषियों का सम्वाद वहाँ प्रारम्भ हो रहा था, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। ब्रह्मा वाचा प्रहीलोकाम् यह समय-समय पर अपने विराट् रूपों को धारण करता रहा है। यह प्राण ही है जो प्राणस्वरूप बन करके मानव के जीवन हमारे जीवन से पवित्र आभा में परणित करा रहा है। जिस आभा को अपने में पान करने के पश्चात् मानव अपनी सृष्टि का अस्वती का रूपाकार नाना प्रकार के रूपों को धारण करने वाला है।

महाराजा दिलीप की वन्दना

महर्षि वशिष्ठ मुनि और राजा दिलीप की मैं तुम्हें पुरातन काल की वह चर्चाएँ प्रकट कराना चाहता हूँ जिन मानव धाराओं को पान करके मानव के जीवन में पवित्रता का दिग्दर्शन प्रायः होता रहता है। जब अमृतं ब्रह्म माता ने कहा हे देवत्व ब्रह्माः वाचननम् वृही कृपा वेद के ऋषि ने यह कहा कहो भगवन्! किस प्रकार तुम्हारा आगमन हुआ? मेरे प्यारे! वार्ताएँ प्रकट होने लगीं। महाराजा दिलीप ने महर्षि वशिष्ठ जी से कहा कि आपके समीप आ पहुँचा हूँ। आपका जीवन धन्य है जो प्रभु का अनुपम चिन्तन करते हैं एक मैं अभागा हूँ जो संसार में कोई भी क्रियाकलाप इस प्रकार का नहीं कर सका हूँ जैसे ही महाराज

वशिष्ठ मुनि से महाराज ने यह कहा वे अपने में मौन हो गए। जब अपने में मौन हो करके गम्भीरता का चिन्तन करना अपने में प्रारम्भ किया तो ऋषियों ने कहा बोलो राजन्! तुम्हारा आगमन क्यों हुआ? उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसलिए आया हूँ आपके नामोकरण को श्रवण करता हुआ आज मैं आपके चरणों की वन्दना कर रहा हूँ। आभा में निहित रहने वाला हूँ हे प्रभु! मुझे आज्ञा दीजिए हमारा जो अयोध्या का वंश है वह समापन होने जा रहा है। मुझे किसी ने यह निर्णय कराया है कि महर्षियों के द्वारा उनकी जो आभाएँ सुगन्ध हैं वही तेरे जीवन को पवित्र बना सकती हैं अन्यथा जीवन पवित्रता की वेदी पर आना असम्भव हो जाता है। जब यह वाक्य इन्होंने प्रकट किया तो वह अपने गम्भीर चिन्तन की प्रतिभा में परणित हो गए और वह गम्भीर चिन्तन करने लगे और चिन्तन करते-करते इस आभा में मानव अपने को स्वीकार करने लगा है जिससे मानव ऊँची-ऊँची उड़ान उड़ करके परमपिता परमात्मा की महती में वह रत्त हो जाता है। तो जब ऋषि ने ऐसा वर्णन किया इसके ऊपर भी विचार एक विशेष 'रा' रम्भवाः देवो रम्भवाः देवो सम्भवाः मृत्युवंशतम् प्रहे कौश्ल्यवाः ऋषि ने कहा राजन्! क्या तुम किसी सन्तान के पिता नहीं प्राप्त हुए हो 'बाल्य ब्रह्म वाचाः प्रहे लोकाम् नहृण्यंन करोति। हे प्रभु मैंने ऐसा क्रियाकलाप कोई नहीं किया। परन्तु देखो महाराजा विश्वस्थमाः वाचन् महाराजा दिलीप जी ने ऐसा अपना वर्णन किया जो महात्मा वशिष्ठ जी ने कहा जाओ, तुम भयङ्कर वनों में चले जाओ और वहाँ जा करके ऋषियों के आश्रमों में भ्रमण करो। ऋषि संभवों देवाः और कामधेनु तुम्हारे द्वारा होनी चाहिए। परन्तु कामधेनु की सेवा करो और कामधेनु के गर्भ से इस शक्ति का जन्म होगा और जन्म होने के पश्चात् हमारे हृदयों की जो एक प्रकाशित्ता है वह आनन्दित हो रही है जिसको धारण करके मानव अपने जीवन को पवित्र वेदी पर ले जाता है। जब ऋषि ने यह वर्णन कराया तो मुनिवरो! वे महाराजा संभवा देवो! हे प्रभु! मुझे आज्ञा दीजिए अब जैसा आपने मुझे वचन कहा है मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना

चाहता हूँ। मैं अपने राष्ट्र में पुष्पाञ्जलि चाहता हूँ जिससे मेरा राष्ट्र ऊँचा बने मैं अपने राष्ट्र में एक महान् प्रतिभा का दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। मेरा वंश ऊँचा बने क्योंकि वंश भी यज्ञ की एक भूमिका कहलाता है। एक अनु-पूर्णिमा कहलाता है जिसको जान करके मानव हृदय में एक महान् अनुपमता की धारा का जन्म होता रहता है।

महात्मा वशिष्ठ मुनि जी महाराज, महाराजा दिलीप जी दोनों का विचार-विनिमय चल रहा था। उन्होंने कहा हे प्रभु! माता अरुन्धति ने तो नाना प्रकार के प्रश्न किए हैं परन्तु मैं भी आपसे कुछ प्रश्न करने वाला हूँ। उन्होंने कहा हे प्रभु! मैं अब क्या करूँ, मेरे लिए मार्ग दीजिए। उन्होंने कहा मेरे विचार में तो यह आता है कि जब तक आप अपने गृह को ऊँचा गृह वाला सङ्कल्प घोषित नहीं करेंगे तब तक तुम्हारे जीवन में अधूरापन रहेगा। उन्होंने कहा प्रभु! कैसे, किस प्रकार हो सकता है? उन्होंने तब उत्कृष्ट योजना का उसका घोष करो कुछ प्रेरणा मंगलमूगृही वाचाः उसकी तुम ऊँची कल्पना करते हुए और अपने भयङ्कर वन में भ्रमण करो और यह स्वतन्त्र रहनी चाहिए। कामधेनु स्वतन्त्र रहे या न रहे परन्तु धेनु का रूप स्वतन्त्र रहना जिससे वह अपने महान् वेला पर अपनी गति कर सके। जब वशिष्ठ जी ने यह वचन कहा तो ऋषि ने कहा बहुत प्रिय। मेरे प्यारे! ऋषियों का जीवन ऊँची गति वाला न बने, परन्तु देखो ऊर्ध्वा में रत्त रहने वाला शब्द अनुपम अपनी मानवीयता की भूमिका बनाता हुआ इस सागर से पार हो जाता है।

महर्षि शृङ्गी जी से यज्ञ की प्रार्थना

मैं विशेष विवेचना तुम्हें देने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ मैं कोई विशेष चर्चाओं में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल यह देने के लिए कि महाराजा दिलीप जी ने जब यह श्रवण किया कि महर्षि शृङ्गी अपने में याग करते हैं, मुझे भी याग कराना है तो उससे पूर्व राजा यह सङ्कल्प कर गए थे कि मैं राष्ट्र का अधिकारी नहीं

हूँ। मैं राष्ट्रीय और राज्यता का अधिकारी नहीं हूँ जो मैं पूज्यपाद ऋषि देव के समीप अपनी वाणी की प्रतिभा अथवा उस की विशेषता का मैं वर्णन कर सकूँ। तो मुनिवरो! देखो जब यह वाक् उनके विचारों में परणित किया गया तो महाराजा दिलीप जी कामधेनु को ले करके वह स्वतन्त्र रूपों में विचरण करती थी। ऋषि के समीप पहुँचे और उनसे यज्ञ कराने की प्रार्थना की। जब ऋषि ने यह श्रवण किया तो आचार्य ने वह स्वीकार कर लिया और स्वीकार करके याग की रचना का प्रादुर्भाव हुआ। जब यह प्रभु की आभा में रत्त रहने लगे। प्रभु की महानता में मानो रत्त रहकर के कामधेनु उसके आगे है और वह स्वयँ उसके पश्चात्। उसके हृदय में एक यज्ञ आकांक्षा लगी हुई है कि मैं पुत्रेष्णावादी बनूँ, मेरे में जो एक ऐषणा का उत्पन्न हो रहा है मैं उस ऐषणा को समाप्त करूँ। परन्तु समाप्त कैसे हो? समाप्त नहीं होने वाली उसके ऊपर नाना प्रकार की उस नाना अस्वती रूपों में यह जगत और जगत की अस्वती रूपों में यह अनुपमता का हमें प्रायः दर्शन होता रहा है।

महात्मा गौतम के आश्रम में प्रवेश

महाराजा दिलीप जी उस कामधेनु को लेकर के भ्रमण करते हुए मुनिवरो! भयङ्कर वन में जा पहुँचे। जब भयङ्कर वनों में जा पहुँचे तो भयङ्कर वनों में बेटा! नाना रूप दृष्टिपात आते हैं। परमात्मा की अनुपम रचना में इस सृष्टि के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूपों का प्रायः हमें दिग्दर्शन होता रहता है। इन दर्शनों के ऊपर प्रत्येक मानव का जीवन उससे कटिबद्ध रहता है। तो महाराजा दिलीप जी ने कामधेनु के पश्चात् गति प्रारम्भ की तो मुनिवरो! एक समय कामधेनु भ्रमण करते-करते वह महात्मा उद्यालक के आश्रम में प्रवेश किया। जब महात्मा उद्यालक मुनि के द्वार पर पहुँचे तो महात्मा उद्यालक मुनि महाराज अपने में कुछ अनुसन्धान कर रहे थे, तो अपने में कुछ विज्ञान की धाराओं में रत्त हो रहे थे। कामधेनु पहले उनके यहाँ गऊओं का कुछ गमन किया जा

रहा था। उन्हीं गुऊओं में कामधेनु का भी मिश्रण हो गया। जब कामधेनु का मिश्रण हुआ तो महात्मा गौतम के द्वार पर राजा पहुँचे तो राजा का बड़ा ऊर्ध्वा में स्वागत किया। आओ भगवन्! विराजमान हो जाओ तो जैसे वे विराजमान हुए। अग्रतम तो उन्होंने कहा अहो ऋषिवर! आप राजा होते हुए ऋषिवर! इसको मैं नहीं जान पाया। महाराजा दिलीप जी ने कहा हे गौतम अन्तर्हृदय नाना प्रकार के शून्यत्व पदार्थों में रत्त हो जाता है। अपने जीवन की वह जो भूमिका उस प्रकार नहीं बन पाती जिस प्रकार वह मानव अपने में बनाना चाहता है। ऊर्ध्वा में रत्त करना चाहता है। ऋषि ने कहा, कहो भगवन्! गौतम ने कहा महाराज! यह कैसे? उन्होंने कहा प्रभु! मैं एक समय अपने पूज्य ऋषियों के समूह में विद्यमान था। परन्तु देखो जब पूज्यपाद की कामधेनु गऊ रात्रि के काल में अपने आसन से पृथक् होकर के उनकी आभा में रत्त हो करके उनकी गऊओं में मिश्रण करके गति करने लगी तो राजा दिलीप ने कहा गौतम हे ऋषिवर! मेरी कामधेनु कहाँ गई? उन्होंने कहा कि कामधेनु नाना प्रकार के स्वरूपों में रत्त रह करके मेरे यहाँ जो सहस्त्रों गऊएँ रहती हैं आश्रम का क्रियाकलाप चलता रहता है उन्हीं गऊओं में उसका मिश्रण हो गया है। वह समय-समय पर अपनी धाराओं में रत्त रहने वाला अपनी क्रियाओं में करने वाला जो उनका अनुपम तप था। वह तपों में रत्त रह करके महाराजा दिलीप ने कहा प्रभु! मेरी कामधेनु मुझे प्रदान कर दीजिए। उन्होंने कहा कामधेनु अपने ही जातियता में प्रायः रत्त हो रही। उसी में मग्न है उसी में रत्त रह करके तुम्हारी अनुपम धाराओं का दिग्दर्शन करा रही है। तो मुनिवरो! महाराज दिलीप ने इन वाक्यों को स्वीकार करते हुए वह उन आश्रम की कृतिकाओं में रत्त रहने लगे जहाँ नाना रूपों में अपने को दृष्टिपात करता है। नाना प्रकार के रूपों में एक योगेश्वर अपने को दृष्टिपात कराता है। नाना प्रकार के शब्दों में वेद ध्वनियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराओं का हमें प्रायः जन्म होता रहा है। इस जन्म को अपने में धारण करने वाले अपने में ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होते रहे हैं।

महाराजा दिलीप कामधेनु वार्ता

मैं विशेष चर्चाएँ न देता हुआ केवल देखो अब्रहो सायँकाल को आश्रम में जैसे गऊओं का आदान हुआ तो वह कामधेनु गऊ राजा के समीप पहुँची और राजा दिलीप के चरणों में ओतप्रोत हो करके उन्होंने उनके चरणों की वन्दना की। उसने कहा देवी तू बड़ी विचित्र है तू कहाँ गई थी? इन आभा में वह अपने में एक अप्रोततूस्वाः सन्जंगृतीलोकाम् कामधेनु ने कहा कि मैं अपने जातियता में अपनी धाराओं को ले गई और मैं यह विचारने लगी कि क्या मेरा एक तपोमयी जीवन है वह कितना प्रभावशाली है? तो उन्होंने कहा कहो धेनु! तुम्हारा जीवन तपोमय है? उन्होंने कहा प्रभो मैं तपो में रहती हूँ। उन्होंने कहा कामधेनु का कौन-सा तप है? उन्होंने कहा कि कामधेनु का तप क्या होता है? कामधेनु तो यह चाहती है कि मैं बन्धनों की वन्दना में सदैव रत्त रह करके और अपने बन्धन की धाराओं को मुक्त करते हुए मैं प्रभु! को प्राप्त हो जाऊँ। क्योंकि प्रत्येक मानव, योगेश्वर अपने में रत्त रह करके और वह कामना करता रहता है कि मैं मोक्ष को प्राप्त हो जाऊँ। उसका केवल लक्ष्य यही होता है। इसी प्रकार प्रभु मैं भी यही चाहती हूँ कि मेरा जीवन मोक्ष की पद्धति को अपनाता हुआ अपने में महान् बनाता हुआ और उसकी उज्ज्वलता को पवित्रता की वेदी पर ले जाए। कामधेनु ने यह वाक् ऋषि का स्वीकार नहीं किया। परन्तु राजंब्रह्माः तत्मस्थं नमः वाचनूनं ब्रह्मा गायन्तो दधि वर्णनं ब्रह्मवाचाः वेद के आचार्य ने कहा हे ऋषिवर! यह "वेदां अमृताम् पानाम् दधिवृताम्" उन्होंने कहा प्रभु! वास्तव में ऐसा ही है मैं कामाम् पुत्रोवाचस्पृहे वायु सम्भवाः देवो ब्रह्मेः वाचनन्ं ब्रह्म कृतिसो काः जब उन्होंने यह वाक् कहा कि यह गऊ कामधेनु के मुखारबिन्दु से तो हमें यह प्रतीत हो रहा है कि यह कुछ अपनी कुछ प्रेरणा दे रही हैं परन्तु आपके मुखारबिन्दु से हमें कुछ उत्पन्न हो रहा है। आपकी कामधेनु हमें कहाँ पहुँचा रही है। इस आभा को ले करके कामधेनु की वार्ता मेरे प्यारे! राजा दिलीप

से नित्यप्रति होती रहती थी और राजा ने यह निश्चय कर लिया कि कामधेनु मेरी पूज्य है मैं उसको पूजनीय बनाऊँगा, मैं इसका पूजन करूँ।

मोक्ष की पगडण्डी

काम-गऊ के पूज्य का अभिप्राय क्या है? पूजा का अर्थ क्या है? प्रत्येक मानव पूजा के इस क्षेत्र में जाना चाहता है। महात्मा गौतम से कहा गया ऋषि ने कहा महाराज! पूजा किसे कहते हैं? ऋषि ने कहा कि तुम कौन-सी पूजा को जानना चाहते हो? उन्होंने कहा मैं उस पूजा का पथिक हूँ जिस पूजा को जानने के पश्चात् शेष क्रिया संसार की जानने योग्य न रहें। परन्तु इस रूप में तो मैं अपने स्वरूप का अपनी उस आभा का वर्णन कर सकता हूँ तो कामधेनु ने अपने इस रूप में इसको रत्त किया। अपने इस रूप को लेकर के वह द्वितीय रूपों का परिवर्तन भी करने लगे तो विचार-विनिमय मेरा यह है आज कि कामधेनु महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने महाराजा दिलीप को प्रदान की थी और यह कहा था कि तुम इसकी सेवा करो और जहाँ यह जाएँ वहीं जाएँ। परन्तु महात्मा गौतम के आश्रम में दोनों का विचार-विनिमय होने लगा तो महात्मा गौतम ने कहा कि महाराज! मैं तुम्हारे आशय को नहीं जान रहा हूँ। महाराजा दिलीप जी ने कहा कि हमारा इतना यह रहस्य गम्भीरतम है कि इसकी प्रतिभा एक मानव को किस योग्यता में ले जा रही है और किस अनुपम ज्योति का दिग्दर्शन कराना चाहती है। तो जब महात्मा गौतम से यह वार्ता होने लगी तो महात्मा गौतम ने कहा कि यह वाक् तुम्हारा यथार्थ है कि तुम संसार में सन्तानोउत्पत्ति के लिए याग का एक क्रियाकलाप कराना चाहते हो, यह बहुत प्रियतम है। परन्तु तुम प्रातःकालीन यज्ञ करो—गौधृत, गौ-दुग्ध के द्वारा यज्ञ किया जाएँ तो महाराजा दिलीप जी का नित्यप्रति का यह क्रियाकलाप बन गया। प्रातःकालीन सूर्य उदय हो रहा है। प्रकाश आ रहा है, उसी प्रकाश में रत्त रह करके पूर्वाभिमुख हो करके प्रातःकालीन महाराजा दिलीप याग करने के लिए तत्पर होते तो याग में परणित हो करके देवपूजा को अपने में

पान करते रहे। वह देवपूजा वाला जो यह अनुपम मानव साकल्य है यह देवताओं की हवि बनकर के देवता इस प्रतिभा को जान करके इस सागर से पार होने का प्रयास करने के लिए तत्पर रहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से एक मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है और वह यह चाहता है कि मेरा मोक्ष होना चाहिए।

मैं मोक्ष की प्रतिभा में जाना चाहता हूँ। कामधेनु भी अपना मोक्ष चाहती है। ऋषिवर भी अपना मोक्ष चाहते हैं। परन्तु प्रलयकाल में वह मोक्ष के रूपों में रत्त रहना चाहते हैं। यहाँ प्रकृति के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूपों का वर्णन महर्षि गौतम मुनि ने किया। महर्षि गौतम ने कहा था कि यह जो प्रकृति के भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों का चयन करने वाली प्रतिभा में तुम्हारा जीवन एक आभा में रत्त रहता है, इस आभा से तुम्हें मुक्त होना है। कामधेनु एक गऊ के रूप में अपना प्रतिपादन करती हुई अपने रूपों का बखान करती हुई, अपने रूपों का गान गाती हुई अपने स्वतन्त्र रूपों में रत्त रहने के लिए तत्पर रही।

महाराजा दिलीप का तप

महाराजा दिलीप और महर्षि गौतम मुनि का विचार-विनिमय होने लगा। महर्षि गौतम मुनि से बोले कि महाराज! मैं जानना चाहता हूँ कि वशिष्ठ ने मुझे कहा है यह कहाँ तक यथार्थ है? समाचन्ततं वांच ब्रह्मी च स्वस्त लोक् ऋषि ने कहा कि ये जो कामधेनु है ये तुम्हारे जीवन की चराचर देवी है, ये तुम्हारे जीवन की प्रतिभा कहलाती है। ऋषि ने जब यह वाक् श्रवण किया। राजा ने यह वाक् श्रवण किया तो मुनिवरो! महात्मा गौतम ने पुनः यह पुनरुक्ति की और उन्होंने कहा यही तो याग विष्णुरूप में रत्त रहने वाला है, यही याग कामधेनु के रूप में रत्त रहने वाला है। यही याग तुम्हारी धाराओं में रत्त रह करके तुम्हारे जीवन की ऊर्ध्वा और वह देखो व त्रिमुखी बना करके तीनों गुणों के गुणाधान अपने में धारण करने वाली है। जब ऋषि से ये वाक् श्रवण

किया तो राजा प्रातःकालीन नित्य प्रति उसी कामधेनु के दुग्ध को और धृत को लेकर याग में परणित हो जाते और यज्ञ में प्रातः अभिमुख हो करके वे याग में परणित हो करके अपनी धाराओं को एक धारा में रत्त करते हुए जीवन की एक धारा एक अनुपम बनाते रहते। आज का हमारा यह विचार हमें बहुत दूर ले गया। हमें एक गम्भीर आभा में रत्त कराने के लिए ले गया है जिसे हम अपने में उस धारा को ले जाकर के और उस कामधेनु की आभा में रत्त कराने के लिए तत्पर रहें तो कामधेनु और महर्षि गौतम मुनि महाराज का दोनों का परस्पर बड़ा विशेष समन्वय रहता था। और लगभग एक वर्ष हो गया था महाराजा दिलीप को गौतम मुनि के आश्रम में कामधेनु के गौघृत के द्वारा यज्ञ करते हुए और ब्रह्मचर्यव्रत से रत्त रहते हुए ब्रह्मचरिष्यामि गौतम पान किया करते थे यह जानने का वाक् है।

वह महर्षि अब्रहो गौतम मुनि महाराज देखो गौधृत के द्वारा और दुग्ध के द्वारा गौ-रसों का पान करते थे और महाराजा दिलीप जी यज्ञ करते, यज्ञ में जो शेष रहता उसको उसका रतन जल में तपा करके उसे पान करते थे तो एक वर्ष तक इस प्रकार का उन्होंने तप किया। एक वर्ष के पश्चात् कामधेनु के गर्भ से नन्दनी का जन्म हुआ और नन्दनी का जब जन्म हुआ तो यह ऋषि – राजा को देवताओं का यह आह्वान हुआ कि हे दिलीप! तुम्हें उस कामधेनु नन्दनी की रक्षा करनी है। कामधेनु का अध्याय पूर्ण हो गया है तो यह आकाशवाणी भी हुई, उन्हें यह प्रेरणा प्राप्त हुई। ऋषि मुनियों ने यह पुनः उन्हें आज्ञा दी कि तुम इसकी रक्षा और इसकी आभा में रत्त हो जाओ। अब देखो नन्दनी पनपती रही। कामधेनु को वहीं त्याग दिया और नन्दनी की सेवा करने लगे। नन्दनी अपने में बड़ी पूर्णतओं में प्राप्त होती रहती थी। गौधृत के द्वारा गौ-दुग्ध के द्वारा याग करते और इस पीपल की समिधा के द्वारा कहीं चन्दनी वृत्तियों की समिधाओं के द्वारा कहीं वध धूली के द्वारा नाना प्रकार की समिधाओं के द्वारा वह यज्ञ करते और वायु का

सेवन करते प्रातःकाल में और वह खरल बना करके कुछ पदार्थों का पान करते। इसी प्रकार तप किया जा रहा था। उस तप के निधान से वह आश्रम को महाराज दिलीप ने त्याग दिया।

महर्षि श्वेताश्वेतर ऋषि महाराजा दिलीप का विचार विनिमय

मुनिवरो! देखो वह आगे भ्रमण करते महर्षि गौड़ गौस्त्र आश्रम में विद्यमान हो गए, महर्षि गौस्त्र मुनि महाराज बाल्य थे उनके पिता विद्यमान थे। उनके पिता श्वेताश्वेतर ऋषि ने राजा का स्वागत किया और राजा से कहा धन्य है राजन्! आइये हमारा यह अहोभाग्य है। उन्होंने कहा प्रभु हे दिलीप जी! तुम क्या चाहते हो? तुम इतना कठोर तप कर रहे हो। उन्होंने कहा प्रभु मैं चाहता क्या हूँ, मैं राष्ट्र को चाहता हूँ अपने हृदय की महानता को चाहता हूँ। मैं चाहता क्या हूँ मैं ऋषियों के ऋण से उऋण होना चाहता हूँ। मैं चाहता क्या हूँ मैं पित्रों का याग करना चाहता हूँ। उन्होंने एक ही प्रश्न के इतने उत्तर दिए तो गौस्त्र मुनि के पिता श्वेताश्वेतर मौन हो गए और मौन हो करके उन्होंने कहा, बहुत प्रियतम! श्वेताश्वेतर ने अगले दिवस एक प्रश्न किया दिलीप जी यह जो राष्ट्र है यह क्या है? महाराजा दिलीप जी ने कहा यह जो राष्ट्र है यह अनुशासन है। अनुशासन का नाम राष्ट्र कहलाता है। तो ऋषि ने कहा कि अनुशासन किसे कहते हैं? उन्होंने कहा प्रजा अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाली हो तो उस समय उसे अनुशासन कहा जाता है। तो श्वेताश्वेतर ने कहा हे राजन्! जब प्रजा का प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगेगा तो राष्ट्र क्या है? उन्होंने कहा राष्ट्र अनुशासन की अनुश्रमिका कहलाती है। वह राष्ट्र की प्रतिभा कहलाती है। तो उन्होंने कहा कि राष्ट्र कर्त्तव्यवाद का नाम है और कर्त्तव्यवाद हो रहा है तो राष्ट्र का अपना अस्तित्त्व क्या है? उन्होंने कहा कि कोई अस्तित्त्व नहीं है केवल नामों का अस्तित्त्व कहलाता है जिसमें इस भूमिका को रचा है जो भूमिका को नियन्त्रित कराने वाला है। उसकी महत्ता का वर्णन आता रहता है। जब राष्ट्र

की चर्चा आई तो उन्होंने कहा राष्ट्र का जो जन्म है वह महान् ध्रुवा से बनता है, ऊर्ध्वा से? तो महाराजा दिलीप ने कहा कि ऊर्ध्वा से बनता है। जब तक माता-पिता ऊर्ध्वा में नहीं होंगे तो बाल्य ऊर्ध्वा में नहीं हो सकता, परन्तु जब तक राष्ट्र ऊर्ध्वा में नहीं बनेगा, तो प्रजा नहीं बनेगी। इसलिए मैं तप कर रहा हूँ। मैं कामधेनु की सेवा जब तक मैं स्वतः नहीं करूँगा, गऊओं की रक्षा जब तक स्वतः नहीं करूँगा तब तक मेरे राष्ट्र का कोई मानव गऊओं की रक्षा नहीं कर सकता। जब तक मैं याग नहीं करूँगा, देवपूजा नहीं करूँगा–देवपूजा का मेरा क्रियाकलाप नहीं बनेगा तो प्रजा भी देवपूजा नहीं कर सकती। जब तक मैं सङ्गतिकरण और ब्रह्मयज्ञ नहीं करूँगा मेरा बाल्य भी देवयज्ञ नहीं कर सकता। इसलिए प्रत्येक मानव को ब्रह्मयाज्ञी बनना है। ब्रह्मनिष्ठ बनना है। देवपूजा करनी है। राष्ट्र को पवित्र बनाना है तो राजा को स्वतः महान् बनना होगा और जब तक राष्ट्र महान् नहीं बनेगा तब तक प्रजा महान् कदापि नहीं बन पायेगी।

जब महाराजा दिलीप ने श्वेताश्वेतर के प्रश्नों का यह उत्तर दिया तो श्वेताश्वेतर महाराज मौन हो गए। तो यही अनुशासन है जो प्रजा से लेकर राष्ट्र, और राष्ट्र से ले करके ऋषि-मुनियों तक यही मोक्ष की पगडण्डी में ले जाता है। तो मुनिवरो! देखो वह आनन्दवत् रहता है और वह आनन्दवत् रह करके परमात्मा के आनन्दमयी चित्त में ही वह रत्त रह करके अपने में आभासित रहता है। तो विचार-विनिमय क्या है? महाराजा दिलीप यह चाहता है कि मेरे गृह में एक सन्तान का जन्म हो तो मैं कामधेनु की रक्षा इसलिए कर रहा हूँ। श्वेताश्वेतर ने कहा कि तुम्हारा यह स्वार्थ क्रियाकलाप है, यह प्रिय नहीं लग रहा है। उन्होंने कहा प्रभु मैं स्वार्थी नहीं हूँ। मैं निस्वार्थ हो करके सेवा कर रहा हूँ। मैं निस्वार्थ हो करके देवपूजा कर रहा हूँ। मैं निस्वार्थ हो करके अपनी भूमिका को जन्म देना चाहता हूँ। महाराज दिलीप अपने में इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तरोत्तर दे करके श्वेताश्वेतर मौन हो गए।

ऋषि ने एक प्रश्न किया था राजा दिलीप से कि तुम **मोक्ष किसे कहते हो?** उन्होंने कहा मोक्ष उसे कहते हैं जो इस संसार से उपराम हो जाता हैं उन्होंने कहा संसार से उपराम कौन होता है? उन्होंने कहा संसार से उपराम वह प्राणी होता जो निष्क्रिय हो जाता है। जो निस्वार्थ बन जाता है, जो निस्वार्थ से ऊर्ध्वा गति को प्राप्त हो जाता है। उन्होंने कहा निस्वार्थ कौन होता है? उन्होंने कहा निस्वार्थ वह होता है जो व्यष्टि और समष्टि दोनों को जान लेता है। उन्होंने कहा **व्यष्टि और समष्टि किसे कहते हैं?** व्यष्टि कहते हैं इस बन्धन को, समष्टि कहते हैं जब बन्धन से मुक्त हो जाते हैं तो समष्टि में रत्त रह करके आगे गति करने वाला समाज अपनी भूमिका पवित्र बना लेता है। तो उन्होंने कहा समस्त ब्रह्मवेत्ता प्रहे लोकाम् वाचं ब्रह्मीवाच को प्रही लोकाम्। जब उन्होंने यह वाक् कहा समष्टि व्यष्टि का वर्णन किया। उन्होंने कहा समष्टि में क्या होता है, व्यष्टि में क्या होता है? उन्होंने कहा व्यष्टि कहते हैं एक बन्धन की प्रतिभा को और समिष्ट कहते हैं जो प्रत्येक अपनी इन्द्रियों को अपने को प्रत्येक देवता से अपनी इन्द्रियों को पिरो लेता है और पिरो करके वो दूसरे को अपने हृदय से समन्वय कर लेता है और हृदय का जो समन्वय है वही समन्वय एक माला के सदृश बन करके समष्टि-व्यष्टि को पिरोकर अपने आनन्द को ग्रहण कर लेता है। यह वाक् उच्चारण करके महाराजा दिलीप जी मौन हो गए। और दिलीप जी ने कहा प्रभु! आगे से मैं कोई प्रश्न नहीं करूँगा। आज के प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दे सकूँगा।

मेरे प्यारे! यहाँ राष्ट्रवाद क्या है? इसके सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं केवल इतनी है कि देखो राष्ट्र जब ऊँचा होता है राजा स्वतः ऊँचा हो तो प्रजा उसका अनुसरण करती है। माता जब ऊँची होती है तो बाल्य उसका अनुसरण करता है। आचार्य जब तपा हुआ होता है तो ब्रह्मचारी उसका अनुसरण करता है। जब आचार्य कोई वाक् मिथ्या उच्चारण करता है, उसका क्रियाकलाप पवित्र नहीं होता तो आचार्य के

ब्रह्मचारियों का अस्तित्त्व नहीं रहता। आचार्यों का अस्तित्त्व रहता है। इसलिए इस समष्टि-व्यष्टि में संसार परणित हो रहा है। इसके ऊपर मानव को विचार-विनिमय करना है। अब आगे दिलीप जी और श्वेताश्वेतर की एक वर्ष की चर्चाएँ हैं मैं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय ये है कि महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने दिलीप जी को आज्ञा दी कि तुम कामधेनु की सेवा करो ओर कामधेनु के गर्भ से नन्दनी का जन्म होगा। नन्दनी की सेवा करो। अब वह नन्दनी की सेवा करने लगे हैं। कल समय मिलेगा तो नन्दनी की वार्ताएँ और देखो वह मृगक्रमगहा भयङ्कर वनों में जो पूर्वाभिमुख हो करके दिलीप जी याग करते थे उन यज्ञों की चर्चाएँ वह साकल्य से क्या-क्या वार्ता प्रकट करते थे, ये चर्चाएँ मैं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् समाप्त, वेदों का पठन-पाठन।

वेद पाठ .....

पूज्य महानन्दजी—अच्छा भगवन्! आज्ञा।
पूज्यपाद-गुरुदेव—ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

दिनाँक : 25 फरवरी, 1985
समय : दोपहर 3 बजे
स्थान : लाक्षागृह, बरनावा

।। ओ३म् ।।

महर्षि वशिष्ठ मुनि व माता अरुन्धती की यज्ञों पर चर्चा

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चेतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है। वह अनन्तमयी है। उस महान् प्रभु की उपासना अथवा उसका अनुसरण प्रत्येक मानव को क्या, प्राणी मात्र को करना चाहिए। क्योंकि वह जीवन का संचालन करने वाला है। हमारे वेदों के पठन-पाठन में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का प्रायः वर्णन आता रहता है। उसकी जितनी विचित्र यह रचना है उस रचना के ऊपर भी उस महान् प्रभु की महानता का वर्णन है। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही ऋषि-मुनि एकन्त स्थलियों पर विद्यमान होकर के उस ब्रह्म का चिन्तन करना प्रारम्भ करते रहते थे, तो उसकी महानता का प्रायः वर्णन उनकी प्रतिभा में दृष्टिपात आता रहा है।

ऋषि मुनियों का चिन्तन

आज हम इसलिए एकत्रित हुए हैं कि हम अपने प्रभु के सम्बन्ध में और इस ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन कर सकें क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रायः उड़ान उड़ता रहा

है। आज मैं इस उड़ान में तो तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ, परन्तु विचार यह कि इस संसार को मानव ने अपने-अपने दृष्टिकोण से मापने का प्रयास किया है। जिस भी दार्शनिक ने जिस भी महापुरुष ने इस संसार को मापा है उसने अपने ही दृष्टिकोण से ही मापने का प्रयास किया है। परन्तु कुछ जिज्ञासु ऐसे हुए हैं यथार्थिक जिन्होंने सर्वसम्मति से इस संसार को मापा है। परन्तु आचार्यों ने इस संसार को एक यज्ञशाला के रूप में मापने का प्रयास किया और यह कहा कि यह जो संसार है यह एक प्रकार की यज्ञवेदी है। **यहाँ प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिए आया है,** क्योंकि यज्ञ–याग करना हमारा कर्त्तव्य कहलाता है, **याग एक आत्मा की प्रतिभा कहलाती है।** क्योंकि याग से हमारे मानवीय तथ्यों का आभामयी गुणगान गाया जाता है। जब हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने एकत्रित हो करके इस सृष्टि के सम्बन्ध में और इस यज्ञशाला के रूप में चिन्तन किया तो उन्हें यह संसार एक महानता वाला और एक यज्ञशाला के रूप में दृष्टिपात हुआ। परन्तु जहाँ हम संसार को यज्ञशाला के रूप में परणित करते हैं, तो प्रश्न उठता है कि यज्ञशाला किसे कहते हैं? यहाँ मुनिवरो! सुगन्ध का जन्म होता है, जहाँ दुर्गन्धि को समाप्त किया जाता है तो उन विचारों में भिन्न-भिन्न प्रकार के कुछ विचार भी याग कहलाते हैं। परन्तु उसमें एक-दूसरे गुणों में गुणोंती प्रदान करना भी एक याग कहलाता है। जैसे हमारे यहाँ सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, जब एक-दूसरे के पूरक हम कर लेते हैं तो वह एक यज्ञ का स्वरूप बन जाता है। वह यज्ञ की धारा बन जाती है। जैसे हमारे यहाँ पुरातन काल में जब ऋषि-मुनियों ने यह विचारना प्रारम्भ किया कि यज्ञशाला एक महान कर्म है, एक महान् प्रतिक्रिया है, एक महान् क्रियाकलाप है जिसके ऊपर परम्परागतों से क्या सृष्टि के प्रारम्भ से ही लेकर के वर्तमान के काल तक अन्वेषण अथवा विचार विनिमय होता रहा है। जिस विचार को आचार्यों ने बड़े विशुद्ध और चिन्तनीय, आत्मा को साक्षी करते हुए जिस वेदी को रचा

है हम उस वेदी पर जाने के लिए सदैव तत्पर हैं। जो भी मानव के हृदय से सुभावना, सुप्रतिभा का जन्म होता है अथवा उसमें कोई न कोई सुगन्धि है, जैसे माता अपने पुत्र को उपदेश देती है और अपने हृदय से वे वाक्य को, अपनी धाराओं को लेकर के बालक के अन्तःकरण में पिरो देती है तो उसका एक प्रिय पवित्रता में विचार आ रहा है और उस विचार के आधार पर एक प्रिय यज्ञ विचारों का हो रहा है। वह विचाररूपी सुगन्धि है, वह मानव के हृदय को पवित्र बना देती है। वह मानव की प्रतिभा को मानवीयता में परणित कर देती है। तो इसी प्रकार प्रत्येक मानव को अपने जीवन में सुचिन्तन करना सुविचार लाना और अग्नि के समीप जाकर के अग्न्याधान करना यह एक याग कहलाता है।

ब्रह्मयाग

हमारे यहाँ परम्परागतों से दो प्रकार के यागों का चलन प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में होता रहता है। जहाँ देखो हम ब्रह्म याग में परणित होते हैं, ब्रह्मयज्ञ में जब निहित होते हैं तो ब्रह्मयज्ञ में हम ब्रह्म का चिन्तन करते हैं और ब्रह्म का चिन्तन करते-करते ब्रह्मयागी बनते हुए इस संसार को निहारते रहते हैं। इस संसार के ऊपर हम अन्वेषण और अनुसन्धान करते रहते हैं। जहाँ तक हमारे नेत्रों की ज्योति ही क्या हमारी मानवीय तरङ्गें जाती हैं वहाँ तक उन तरङ्गों को हम व्यापक रूप देना प्रारम्भ करते हैं। परन्तु जब उन तरङ्गों का समावेश अपने अन्तःकरण में करते हुए आन्तरिक यज्ञों में परणित हो जाते हैं और आन्तरिक जगत् में जब प्रवेश हुए तो देखो वे एक **मनुवाचक यज्ञ** का प्रारम्भ हो जाता है, वह ब्रह्म यज्ञ कहलाता है। क्योंकि ब्रह्म का चिन्तन करना और ब्रह्म की प्रतिभा को निहारना और अपने को महान् बनाना है अपनी प्रत्येक इन्द्रियों का शोधन करना, **प्रत्येक इन्द्री को अगाध समुद्र में ले जाना, यह मुनिवरो! हमारा मानवीयता, अपने को ऊँचा बनाने का नाम हम ब्रह्मयाग में परणित करते रहते हैं।**

देवयाग

ब्रह्मयाग में परणित होते हैं तो उसके पश्चात् देवपूजा का व्यवधान आता है। देवपूजा करना प्रारम्भ करते हैं। वह देवपूजा क्या है? हम देवताओं की पूजा करें। देवताओं के समीप जाकर के हम अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाएँ। हम अपने हृदय को महान् बनाने का प्रयास करें। यह देवाः ब्रह्माः वह देवपूजा कहलाती हैं। क्योंकि पूजा का अभिप्राय तो मैंने तुम्हें कई कालों में प्रकट किया है। पूजा का अभिप्राय यह है कि **सदुपयोग का नाम ही उसकी पूजा कहलाती है।**

देवताओं का आह्वान

देवपूजा हम कर रहे हैं, हम देवताओं का आह्वान करके कहते हैं, अग्नि! तू इन पदार्थों का भेदन कर, हे अग्नि! तू देवताओं का दूत बन करके आ और तू समाज को इस महान् मेरे सङ्कल्प को ले करके इसका वितरण कर और इसका विभाजन करके तू इसका मानव रूप से द्वितीय रूप बना करके इसको अपने में धारण कर। क्योंकि अग्नि सबसे प्रथम प्रत्येक पदार्थ का भेदन कर देती है। इसी प्रकार हमारे विचारों का, हमारी मानवीयता का भी वही भेदन करने वाली है तो ऐसा कहा जाता है।

याग क्रम

हमारे यहाँ नाना ऋषि हुए हैं जो ब्रह्मयाग के पश्चात् देवयाग में परणित रहे हैं। राजा जनक के ऊपर भी नाना प्रकार की टिप्पणियाँ आती रहती हैं। यहाँ राजा जनक ही नहीं और भी नाना ऋषि इसी प्रकार के हुए जो ब्रह्मयाग करने के पश्चात् वह देवपूजा में परणित हो जाते। महाराजा रघु के सम्बन्ध में भी प्रायः ऐसा श्रवण किया गया है, जब वह प्रातःकालीन याग करने के पश्चात् ब्रह्मयाग में परणित हो जाते थे और ब्रह्मयाग से देवयाग में परणित होना। दोनों यज्ञों को एक-दूसरे का पूरक स्वीकार करते हुए उसी की प्रतिभा में रत्त रह करके

अपनी-अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाना, एक उनका क्रियाकलाप बन गया। मुझे स्मरण है उनके पिता का—महाराजा दिलीप जी प्रातःकालीन याग करते रहते थे। जब महाराजा दिलीप याग करने के लिए तत्पर रहते तो सबसे प्रथम वह प्रातःकालीन गोघृत के द्वारा, गौ-दुग्ध के द्वारा देवयाग करते थे। प्रातःकालीन जहाँ देवयाग किया और ब्रह्मयाग ब्रह्मवाचोंः वह ब्रह्मयज्ञ भी दोनों करते रहते।

ब्रह्म की उपासना

एक समय जब महाराजा दिलीप जी के हृदय में यह आशंका बनी, यह विचार बना कि मैं वशिष्ठ मुनि की आज्ञा पाकर के अपना कल्याण चाहता हूँ, तो मुनिवरो! राजा दिलीप जी भ्रमण करते हुए महात्मा वशिष्ठ मुनि के द्वार पर पहुँचे। क्योंकि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता थे, वह ब्रह्मनिष्ठ होने से जब राजा उनके समीप पहुँचे तो माता अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज प्रातःकालीन ब्रह्मयाग कर रहे थे तो ब्रह्मयज्ञ में रत्त और उसके पश्चात् देवयज्ञ में। जब वह ब्रह्मयज्ञ में रत्त थे तो महाराज दिलीप जी उनके चरणों की वन्दना में वह भी स्थिर हो गए तो **ब्रह्मयाग में वह ब्रह्म की उपासना कर रहे थे और उच्चारण कर रहे थे** कि ब्रह्मन्! तू कितना महान् है, तू तपोमयी है, तेरा उग्र ही तप है, जो हमें यह संसार दृष्टिपात आ रहा है तेरा उग्र तप है जो सूर्य की धारा बन करके हमें तपा रहा है, तेरा उग्र तप है जो अग्नि बन करके हमें प्रकाश दे रहा है। ऊष्ण बना रहा है। तेरा उग्र तप है जो वायु हमें प्राण दे रही है। इस प्रकार की उपासना करते-करते महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज माता अरुन्धती उसमें शान्त हो करके उसके पश्चात् वह देवयाग में लग जाते।

अग्नि का आह्वान

देवयाग में जाकर के देवताओं का आह्वान करते। **आह्वान का अभिप्राय क्या है?** अग्नि का अग्न्याधान करना व उसका आह्वान करना

और यह कहते हैं कि हे अग्नि! तू द्यौ बन करके तू ही तो प्रकाश का द्योतक बना हुआ है। हे अग्नि तू ही तेजस्वी बन करके तू अमृत को बहाने वाली, चन्द्रमा की कान्ति बन जाती है तू कितनी विचित्र है इस प्रकार का जब अग्नि का आह्वान करते। **अग्नि के आह्वान का अभिप्राय यह है** कि अग्नि के भावों को अपने में धारण करना और अग्नि के स्वरूप को यह स्वीकार करना कि यह जो अग्नि है यह भिन्न रूपों वाली अग्नि है। यह अग्नि ही हमें दाह करने वाली है। यह अग्नि हमें भोज्य पदार्थों को प्रदान करने वाली है। यही गार्हपत्य बन करके ब्रह्मचर्य को धारण कराने वाली अग्नि है, यही वैष्णव बन करके दण्डक वनों में रहने वाली अग्नि है। यही अग्नि देखो विचित्र या गार्हपत्य बन करके गृह का स्वर्ग बनाने वाली है। यही अग्नि है जो देवताओं का दूत बन करके यज्ञशाला में प्रदीप्त हो जाती है। हे अग्नि! हम तेरा आह्वान करते हुए तेरे गुणों को अपने में धारण करना चाहते हैं। प्रातःकालीन जब ब्रह्मयाग के पश्चात् इस प्रकार देवयाग होना प्रारम्भ होता है तो देवताओं का आह्वान करते हैं और जहाँ अग्नि रहती है, वहीं आपो रहता है। जहाँ जल है वहीं पृथ्वी रहती है और जहाँ पृथ्वी रहती है वहीं अग्निमयी प्राणम् रहे वाचप्रहीःलोकाम् अग्निः वायु, वह अग्नि देखो वायु बन करके द्वितीय स्वरूप को धारण करके एक वायु बन करके रहती है। वह प्राण को संचय करने प्राण को उद्भुत करने वाली है, जागरूपता देने वाली है। यही देखो अन्तरिक्ष में शून्य बिन्दु की भाँति सर्वत्र प्राणी एक-दूसरे में परणित हो जाते हैं।

देवताओं की हवि

यह भिन्न-भिन्न प्रकार का जब विचार आता है माता और वशिष्ठ महाराज प्रातःकालीन जब अग्न्याधान करके इस प्रकार अग्नि का चयन करके पात्रों समिधाओं को ला करके आपो में धारा का रमण कराते, अग्नि को अग्नि में समर्पित करना, जब वह उस समिधा को अग्नि में समर्पित करते, तो वही समिधा अग्नि रूप बन करके यज्ञशाला में

विराजमान हो करके यज्ञकुण्ड में देवताओं की हवि बनना प्रारम्भ हो जाती है। वही तो देवताओं की हवि बन जाती है। वही तो देवताओं की विभक्ति क्रिया बन करके देवयाग कहलाता है। तो वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती जब प्रातःकालीन याग करने लगे, ब्रह्मयाग के पश्चात् देवयाग करने लगे, तो देवयाग करते-करते वह ''ब्रह्मवाचुः सम्भवाः देवं ब्रह्म लोकाम् वृहंवृथा दिव्यं गता'' जब वह अग्नि अपने स्वरूप को धारण करके विभक्त क्रिया बन करके वही शोधन का क्रियाकलाप करने लगी। वही तो शोधन करती है, वही तो अशुद्ध परमाणुओं को निगल करके वायुमण्डल का शोधन कर देती है। महाराजा दिलीप जी भी उस समय अरुन्धती और वशिष्ठ के विचारों को श्रवण कर रहे थे।

गौदुग्ध, गौधृत से याग

दोनों का शास्त्रार्थ हो रहा था माता अरुन्धती बोली कि प्रभु मैंने कुछ ऐसा ध्यान किया है कि एक समय जब मैं अपने पिता के द्वार पर विराजमान थी तो मेरे पिता एक समय मुझे ले करके भ्रमण करते हुए कौतुक ऋषि के द्वार पर पहुँचे। तो कौतुक ऋषि महाराज याग कर रहे थे। जब वे याग कर रहे थे तो गौ-दूध के द्वारा वह यज्ञ कर रहे थे। समिधाओं को गौ-दुग्ध में, गौधृत में स्थापित करते हुए अग्नि में प्रदान कर रहे थे। भगवन्! तो क्या यह भी कोई याग होता है? उन्होंने कहा मेरे पिता ने यह कहा, 'सम्भो देवं गृहा! हे पुत्री यह प्रायः यज्ञ की प्रतिक्रिया है। चलो इनसे प्रश्न करेंगे। जब हमने ऋषि से प्रश्न किया तो ऋषि ने यह उत्तर दिया कि मैं इस यज्ञ को इसलिए कर रहा हूँ कि महाराजा इन्द्र के यहाँ यह प्रायः यज्ञ होता रहता था। कामधेनु गऊ के गौधृत के द्वारा जो यज्ञ करता है वह सौम्य कहलाता है। जैसे गौधृत है, गौ-दुग्ध है उसके द्वारा यज्ञ करना सौम्य की प्रतिभा कहलाती है। तो इस समय तो मैं यह जानना चाहती हूँ भगवन्! कि वह ऋषि उसको सौम क्यों कहता था? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज

ने कहा कि वह उसको इसलिए सोम कहते थे वह गौधृत, गौ-दुग्ध होता है यह दोनों सौम्य कहलाते हैं और जब इनका देव याग करते हैं अग्नि में प्रदान करते हैं अग्नि में इस का मार्जन करते हैं अग्निमयी कृतियाओं को रमण कराते तो इसका परमाणुवाद बन करके, वे सौम बन करके देवताओं का भोज्य बन जाता है और देवताओं का भोज्य बन करके दैत्यों को समाप्त करने लगता है।

अग्निष्टोम यज्ञ

ऐसा जब यह वाक्य आया उस समय एक प्रश्न अरुन्धती ने और किया वशिष्ठ से कि महाराज एक समय मैं अपने पूज्यपाद गुरु के द्वारा भ्रमण करती हुई अचम्प लोक में चली गई थी। अचम्प एक नगरी थी अचम्पपुरी में जब गई तो अचम्पपुरी के बहारी सीमाओं पर एक बटुक ऋषि रहते थे तो बटुक ऋषि महाराज उस समय यज्ञ कर रहे थे। और उसमें वे गौधृत और गौ-दुग्ध का मार्जन करते और मार्जन करके ही वह भिन्न-भिन्न वृक्षों की समिधाओं के द्वारा यज्ञ कर रहे थे। भगवन्! मैं जानना चाहती हूँ कि वे यज्ञ इस प्रकार का क्यों कर रहे थे? तो उस समय वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे देवी! वह जो तुमने यज्ञ दृष्टिपात किया था वह अग्निष्टोम यज्ञ कहलाता है। अग्निष्टोम यज्ञ का अभिप्राय यह है कि उसमें बारह प्रकार की समिधाओं का वर्णन आया है। गौधृत के द्वारा, दुग्ध के द्वारा शैलवृति का एक वृक्ष होता है उसकी छाल के द्वारा यह यज्ञ किया जाता है, तो वह अग्निष्टोम यज्ञ कहलाता है। वह वृष्टि यज्ञ के रूपों में परणित हो करके वह सौम्य बन जाता है, यह यज्ञ को भी हम सौम के रूपों में परणित कर देते हैं।

यज्ञ क्यों किए जाते हैं

माता अरुन्धती बोली कि प्रभु! मैंने यह तो स्वीकार कर लिया। परन्तु मैं एक बात यह नहीं जान पायी कि यज्ञ क्यों किए जाते हैं? उन्होंने कहा कि यज्ञ इसलिए करते हैं क्योंकि यज्ञ ही कर्म है संसार

में। तुम्हें यह प्रतीत है कि जिस समय हम पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करते हैं तो जब अध्ययन करते तो गुरुदेव यही कहते हैं कि तुम अपनी आत्मा का यज्ञ करो, तुम अपनी आत्मा में आत्मा का यज्ञ करो। जब आत्मा में आत्मा का यज्ञ होता है, यहाँ अग्नि में अग्नि का यज्ञ होता है। यहाँ पदार्थों का यज्ञ होता है। बाह्य जगत शुद्धीकरण होता है और आत्मा का आत्मा में यज्ञ करना है। अब आत्मा में आत्मा का यज्ञ कौन करता है? यह विचार का एक समय है। आत्मा में आत्मा का यज्ञ कौन करता है? मुनिवरो! देखो आत्मा को हम जानने का प्रयास करें। अब आत्मा का यज्ञ क्या है याज्ञं भवते देवां जो शुद्ध पवित्र तरङ्गों का जन्म होता है, इन तरङ्गों का नाम यज्ञ कहलाता है। जिससे पवित्र बनता है मानव की अन्तरात्मा में पवित्र भाव आते हैं और वही पवित्र भाव मानव के जीवन को एक पवित्रता की वेदी पर ले जाते हैं और वही पवित्रता की जो वेदी है वही पञ्च महाभूत हैं और उन्हीं पञ्च महाभूतों के लोक में आत्मा वास करती है और वह पञ्च महाभूतों का साकल्य बना करके अपने अन्तःकरण रूपी गुफा में, आत्मा का हृदयरूपी गुफा में वास होता है। वह मानव को ब्रह्मयज्ञ की वेदी पर ले जाता है। ब्रह्मयज्ञ की वेदी पर ले जा करके वह मानव ब्रह्मयागी बनता है। ब्रह्मयागी बन करके वे अपने चर्यो ब्रह्म की चरि को चरता हुआ इस जगत से पार हो जाता है, इस संसार से पार हो जाता है। माता अरुन्धती इन वाक्यों को प्रायः स्वीकार करती रहीं।

गौमेध यज्ञ

परन्तु उन्होंने एक प्रश्न और किया। उन्होंने कहा कि हे प्रभु! मैं यह जानना चाहती रहती हूँ सदैव आपके चरणों में विद्यमान हो करके कि जब मैं अपने बाल्यकाल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा एक समय अध्ययन कर रही थी तो अध्ययन करते समय बलवेश्वर ऋषि महाराज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा आए। बलवेश्वर ऋषि ने कहा कि महाराज! यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि मैं गौमेधयज्ञ

कर रहा हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि मैं गौमेधयज्ञ कर रहा हूँ तो गौमेधयज्ञ कौन-सा होता है? वशिष्ठ मुनि ने उत्तर दिया देवी! तुम्हारे पूज्यपाद गुरुदेव ने ऋषि को क्या उत्तर दिया? तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि गोमृतं अन्धकार को नष्ट करता है, अन्धकार को नष्ट करने का नाम यज्ञ है। उन्होंने कहा कि तुम और क्या चाहती हो? महाराज! मेरे हृदय में एक शङ्का बनी रह गई, कि हृदय यह कोई अन्धकार का पुञ्ज नहीं है। उन्होंने कहा हृदय अन्धकार का पुञ्ज नहीं कहलाता। उन्होंने कहा, हृदय में किसकी छाया है जो अन्धकार नहीं रहता। उन्होंने कहा यह जो हृदय है यह परमपिता परमात्मा की अनुपम छाया है। इस छाया के होने से यह अन्धकार का सूचक नहीं बन सकता। माता अरुन्धती बोली कि महाराज क्या मैं इन वाक्यों को स्वीकार करूँ। उन्होंने कहा मत करो, परन्तु जो मैं कह रहा हूँ वह वाक्य वेद की ऋचा कहती है, उस बात का वर्णन कर रहा हूँ। परन्तु देखो माता अरुन्धती ने कहा तो प्रभु! मैं तो इसको स्वीकार नहीं करती। उन्होंने कहा क्यों नहीं करतीं? उन्होंने कहा जो हृदय है यह तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एक समूह का नाम हृदय कहलाता है। उन्होंने कहा देवी ऐसा नहीं है। **हृदय उसे कहते हैं** जिस हृदय में संसार की प्रत्येक वस्तु समाहित हो जाती है और वह समाहित हो करके उसका चेतना से समन्वय हो जाता है उसको हृदय कहते हैं। क्योंकि हृदय में से ही तो श्रद्धा का जन्म होता है, हृदय में ही तो नाना प्रकार की कामनाओं का जन्म होता है। जब हृदय में कामनाओं का जन्म होता है, तो मैं कैसे स्वीकार करूँ मुझे निर्णय दो। परन्तु माता अरुन्धती बोली कि प्रभु निर्णय तो मैं ही चाहती हूँ। उन्होंने कहा मेरे विचार में तो यह है कि हृदयं ब्रह्मां गौमेधाम् गौमेधयज्ञ करने का अभिप्राय तो यह है कि अन्धकार को नष्ट करना है और अन्धकार को कौन नष्ट करता है? विद्यालय में जब ब्रह्मचारी को आचार्य अपने चरणों की वन्दना कराता है। ब्रह्मचारी चरणों की वन्दना करता है तो अपने अन्तःकरण का जो अन्धकार है वह जो प्रकृति का अनुअष्टमीगुण है जो अन्धकार है, उसे

वह नष्ट कर देता है। नष्ट करके उसका जो हृदय है वह अपने हृदय के समकालीन बनाता हुआ आचार्य कहता है ब्रह्मचारी से 'मम् बाचाः मम् बाचाः हृदयम्'। हे ब्रह्मचारी! मेरा तेरा हृदय एक ही तुल्य बन गया है। आ! तू मेरे हृदय का मम बन। तो उसी समय वह हृदय का मम बन करके हृदय की प्रतिभा बन जाता है। तो इसीलिए हृदय आचार्य और ब्रह्मचारी का दोनों का जब एक समन्वय हो जाता है तो वह गौमेधयज्ञ कर रहा है। वह गौमेधयज्ञ में परणित हो रहा है।

इसी प्रकार देखो आगे चल करके जब ब्रह्मज्ञान में परणित होता है, ब्रह्मज्ञान में जब ब्रह्मयज्ञ यज्ञ करता है तो ब्रह्मयज्ञ करता-करता अपने हृदय पुञ्ज में प्रकाश को अनुभव करने लगता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों को उसके प्रकाश तत्त्वों को अपने में सिञ्चन करने लगता है तो देखो बह्मयज्ञ कर रहा है। वह ब्रह्मयाज्ञी बन करके महानता की वेदी पर रत्त हो रहा है। विचार मैं विशेष नहीं दूँगा, केवल परिचय देने आया हूँ। कि विचार तो इससे पूर्वकाल में दिए जा सके हैं। परन्तु विचार केवल यह कि हम मुनिवरो! भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों का चयन अपनी आभा में रत्त करते चले जाएँ।

समिधाओं का जल में शोधन

माता अरुन्धती ने एक प्रश्न किया। उन्होंने कहा प्रभु! मैं और मेरे पिता दोनों भ्रमण करते-करते महर्षि काकभुषण्ड जी के द्वार जा पहुँचे तो महर्षि काकभुषण्ड जी और लोमश मुनि दोनों प्रातःकालीन यज्ञ कर रहे थे। तो वे समिधाओं को ले करके, जल में उन्हें शोधन करके वे अग्नि में प्रवेश कर रहे थे। हम यह नहीं जान पाए जब काकभुषण्ड जी से हमनें प्रश्न किया कि हे ऋषिवर! यह तुम क्या कर रहे हो? अग्नि में प्रवेश कर रहे जलम्प्रोत समिधा को, यह क्या और कौन-सा यज्ञ कहलाता है? उन्होंने कहा यह **मानसुखी यज्ञ** कहलाता है। इसको मानसुखी यज्ञ कहते हैं। उन्होंने कहा तो प्रभु! उनसे आगे प्रश्न नहीं

कर सकी। मैं आपसे जानना चाहती हूँ कि वह मानसुखी यज्ञ कैसे कहलाया गया? उन्होंने कहा हे देवी! तुम नहीं जानती। ऋषि-मुनियों की बड़ी विचित्र शैली होती है कर्मकाण्ड की। वह समिधाओं को ले करके जल में उन्हें वृणित करते हुए अग्नि में प्रवेश कर रहे थे। जल और अग्नि दोनों का समावेश कर रहे थे, समावेश करके इसी प्रकार यह जो जगत है, यह जो नाना प्रकार की समिधाओं वाले जो वृक्ष हैं, इनका समन्वय जल से होता है और जल में इनकी प्रतिभा का जन्म होता है और जितना यह वनस्पति विज्ञान है जितना वनस्पति रूप है यह सब आपो में, जल में इसकी प्रतिष्ठा कहलाती है। इसलिए **वेद का ऋषि कहता है कि यह जो जल है अमृत है, यह जल अमृत है।** इसलिए हमारा जब जन्म होता है, हम जब माता के गर्भस्थल में प्रवेश करते हैं, तो हमारी प्रतिष्ठा भी आपो जल कहलाता है। जब माता के गर्भस्थल में हमारा निर्माण प्रारम्भ होता है तो उस समय जल ही तो है, जल में ही उस बिन्दु की प्रतिष्ठा है, आपो हमारी प्रतिष्ठा कहलाती है। वह कैसा यज्ञ कर रहे थे कि प्रभु! आपने कहीं से प्रारम्भ में ऐसा प्रिय याग किया है कि जल में ही बिन्दु की प्रतिष्ठा है। जल में ही एक बीज रूप की प्रतिष्ठा कहलाती है। तो हे प्रभु! हम भी उसी यज्ञ को करना चाहते हैं। तो महर्षि काकभुषण्ड जी और महर्षि लोमश दोनों बड़े तार्किक और महान् पुरुष कहलाते थे। दोनों अपने में परस्पर चर्चा करते रहते और यज्ञों का चयन करते रहते थे।

इस प्रकार के भावों को ले करके जो यज्ञ करता है वह परमात्मा को अपना साक्षी बनाता है, वह परमपिता परमात्मा को समीप लाकर के अभिमान उसे नहीं हो पाता। इसीलिए ब्रह्मज्ञानी जो होते हैं उन्हें अभिमान नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी जो होते हैं वह यह विचारते हैं कि परमात्मा का जो अनुपम जगत है वह तो ऐसा अनुपम है ऐसा महान् है, कि उसको वह कहाँ तक रूप दे सकता है वह तो निरअभिमानी है, निर्भय है ऐसा ही मुझे बनना है। अब परमात्मा इस प्रभु के राष्ट्र

में आ करके मैं किससे अभिमान करूँ मैं किससे अहम् भाव को लाना प्रारम्भ करूँ? तो इस प्रकार के भाव ऋषि-मुनियों के होते हैं। इसलिए अग्नि का चयन करते रहते थे। अग्नि के प्रकाश में अपने अन्तःकरण का शोधन करते रहते थे। माता अरुन्धती को सन्तुष्टि हो गई, उन्होंने कहा, प्रभु! वह तो ऋषि बहुत दूरी की वार्ता को चिन्तन में लाते रहते थे। उन्होंने कहा देवी जो दूरी की वार्ता को चिन्तन का विषय बनाता है वही तो सागर से पार होता है। वही तो इस अन्धकार से प्रकाश में जाता है। और प्रकाश से मृत्यु को विजय करता है और मृत्यु को विजय करके वह एक परमपिता परमात्मा के अनूठे राष्ट्र में चला जाता है जहाँ एक आनन्द उसे प्राप्त होता है।

महर्षि सौम्य मुनि की जिज्ञासा

जब माता अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज का यह विचार विनिमय चल ही रहा था इतने में देखो कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि सौम्य मुनि आ पहुँचे। तो सौम्य मुनि महाराज ने चरणों को स्पर्श किया। तो वह देवयज्ञ कर रहे थे प्रातःकाल में। उन्होंने कहा आओ भगवन् यज्ञ करेंगे। और वह भी यज्ञ में परणित हो गए, यज्ञ करने लगे। तो उन्होंने कहा प्रभु! मुझे सौम क्यों कहते हैं। वशिष्ठ मुनि बोले हे ऋषिवर! मैं नहीं जानता तुम्हें सौम क्यों कहते हैं। भगवन्! मैं यह जानने के लिए आपके द्वार पर आया हूँ। माता अरुन्धती बोली प्रभु? इसका उत्तर दीजिए। तो उन्होंने कहा इनको सौम ऋषि इसलिए कहते हैं कि यह स्वतः सौम्य हैं क्योंकि आत्मा का जो स्वभाव है वह सौम्य कहलाता है। आत्मा का जो ज्ञान है प्रयत्न है वह सौम लक्षणों वाला है। इसलिए आत्मा को सौम्य कहते हैं। शरीर को सौम इसलिए कहते हैं क्योंकि यह पञ्च महाभूतों में जो-जो सौम की प्रतिभा सौम्यता है वह उसमें निहित रहती है तो इसलिए तुम्हें सौम कहते हैं। उन्होंने कहा तो प्रभु मैं सौम हूँ। उन्होंने कहा हम यह नहीं जानते कि तुम सौम हो कि नहीं, परन्तु सौम की प्रतिभा तो ये प्रतिभाविता तो यह कहती है कि

सौम वही है जो दूसरों को शीतल करने वाली है–सौम जल कहलाता है जो दूसरों को शीतल करने वाला है, सौम्यता देने वाला है। अमृत प्रदान करने वाला है। इसलिए तुम स्वतः अमृत बन करके संसार को अमृतमयी बनाने का प्रयास करो।

सौम की धारा

मेरे प्यारे! मैं आज विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ, अपने विचारों की भूमिका बनाने के लिए आया हूँ और वह बनाना यह है कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में क्या-क्या बनना है? यह विचारना है। आज मैं तुम्हें वह वाक्य उच्चारण कर रहा हूँ कि यज्ञों का कितना विस्तारमयी स्वरूप कहलाया गया है? यज्ञों का कितना विज्ञान है? इस संसार को प्रत्येक मानव ने चिन्तन करते-करते महापुरुषों ने इसको यज्ञवेदी के रूप में परणित किया है। और यह कहा है कि संसार एक प्रकार की यज्ञवेदी है, यज्ञोमयी है, सागरमयी है, आनन्दमयी कहलाती है, विचित्रमयी कहलाती है। इसको हमारे यहाँ प्रत्येक मानव सौम की धारा में अपने को रत्त करता है।

महाराजा दिलीप का आग्रह

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने जब अपना याग समापन किया, देवयज्ञ जैसे ही समाप्त हुआ तो इतने में उन्होंने दृष्टिपात् किया कि महाराजा दिलीप जी भी विद्यमान हैं। महाराजा दिलीप जी से कहा हे भगवन्! हे राजन् तुम कोई वाक् नहीं उच्चारण कर रहे हो, दिलीप जी तुम्हारा आगमन् कैसे हुआ? उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसलिए आपके चरणों में आया हूँ कि मैं भी अपने को सौम बनाना चाहता हूँ। मैं सौम की आभा के लिए आपके चरणों में पधारा हूँ। महाराज दिलीप जी का सौम बनाने की चर्चाएँ तो वह गाथा तो कल ही प्रगट करेंगे। आज का विचार हमारा क्या कह रहा है, आज का विचार कह रहा है कि सौम्यता को अपने में धारण करना है। महाराजा दिलीप जी ने कहा कि प्रभु! मैं

सौम क्या मेरा जो अयोध्या का जो राष्ट्र है निष्क्रिय बन गया है मैं उस अपने राष्ट्र का कल्याण चाहता हूँ। मैं राष्ट्र को सौम्य बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा बहुत प्रिय! ये चर्चाएँ मेरे पुत्रों! कल होंगी।

आज का विचारा हमारा क्या कह रहा है कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, परमपिता परमात्मा को हम एक-एक सर्वत्र विज्ञान का पुञ्ज स्वीकार करते हुए हम परमपिता परमात्मा को विज्ञान की धाराएँ स्वीकार करते हुए, उसका हम पूजन करें। उस पूजन के लिए हम सदैव अपने से प्रभु का ध्यानावस्थित हो करके हम सागर से पार होने का प्रयास करें। यह आज का विचार है। कल समय मिलेगा तो इससे आगे की चर्चाएँ हम प्रकट करेंगे। आज का वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। आज मैंने कुछ बिखरे हुए पुष्पों को संक्षिप्त रूप में प्रकट किया है। कल समय मिलेगा तो इसके विस्तार की चर्चाएँ प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त, वेदों का पठन-पाठन होगा।

वेद पाठ .....

पूज्य महानन्दजी–अच्छा भगवन्! आज्ञा।
पूज्यपाद-गुरुदेव–ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

दिनाँक : 24 फरवरी, 1985
समय : दोपहर 3 बजे
स्थान : लाक्षागृह, बरनावा

Creation, and the Institution of National Order

What is 'Gada' ?

Secondly, you must have a Gada. Ram asked "Sire, What is Gada" ? The sage again joyfully said, " Gada is the name of the warriors. The king must have powerful warriors in his nation, who must possess the knowledge of the self and who must faithfully follow Brahmcharya. The nation where the criminals are punished always remains as Ram Rajya, and that one where the criminals are not punished perished soon. And so, O Ram, you must hold your Gada firm, the criminals are punished and crime must be driven away, and then your kingdom will become Ram Rajya. O Rama, Gada and Padma must find a prominent place in your nation. If any secret of your nation leaks away into another nation, then you must know that the warriors of your nation are not of high morals. A nation with a gada is a pious one.

What is Chakra ?

Thirdly, you must have a chakra.

Rama asked, "Sir, what is a Chakra ? Please explain it."

On hearing this request of Ram, Sage Vashistha spoke, "O Rama, listen. Chakra is the name of culture. But what is Culture ? Culture is that priceless speech which bestows upon man character and etiquette and is immersed in the knowledge of the art of agriculture, commerce and archery and the science of inventing various kinds of machines and also well-versed in maintaining character and Brahmacharya and elevating one's self so as to reach the highest goal of attaining Him. O Rama, You must think over this. If you desire to convert your nation to Ram Rajya you must have a chakra.

What is Shankha ?

O sages ! afterwards Rama asked the Maharshi, "Sire, Now please explain what is shankha. I also desire to hear about it."

Maharshi Vashistha spoke then. "O, Ram ! how great and glorious you are! You deserve all praise for having carried out my advice and adopting Chakra. Now listen what is shankha. Shankha is the name of the voice of the Vedas. The nation where the Vedas are recited in the Jata accent, Mala accent, Ghana accent, Visarga accent, Visharad accent and in various other accents, there the ether always vibrates with the Vedic Mantras. The nation where character is taught - where the Vedic teachings are imparted, always maintains a pure atmosphere and the people there are full of high ideals and character and etiquette. O Ram ! you have enquired to-day what is the Voice of the Shankha. So you must know that the voice of the Vedas. Is the voice of knowledge. The nation where the Yajnas are performed and the Vedas are recited in those Yajnas, there God fulfils the desires of the king and the people both. So, O Ram, if you want to elevate your nation you must be Vishnu."

Rama's greatness

O Sages ! I tell with pride. O God, please send high souls like that of Lord Rama in this world ! I had the privilege of seeing Lord Rama. Lord Rama renounced the luxuries of his royal palace and made the mountains his abode and carried out the commands of the Rishis. He diffused the chakra or culture of his character and etiquette in the world and conquered other kings. He killed Narain tak, the son of Ravana who ruled over the kingdom of Sudir (Present Russia) and made Adhut, the king of that place. He then went on moving and spreading his culture further and reached Patalpuri (present America) where Ahiravana, the son of Ravana was the king. He killed Ahiravana and handed over his kingdom to Makardhwaj, the son of Hanuman. Thus moving and spreading his culture, he came back to Ayodhya.

History continued thereafter. In the annals, however, the important period which has deserved mention, from the cultural point of view, is that of Mahabharatha episode.

Pujyapad Gurudev

॥ ओ३म् ॥

ऋषियों के उद्‌गार

1. यजमान की जो इन्द्रियाँ होती हैं वे यज्ञ के होता का कार्य करती हैं।
2. विचारों को भी समिधा रूपों में परणित किया है।
3. जब हम ज्ञान से आहुति देते हैं तो उस आहुति का जो सूक्ष्म रूप है, वह देवताओं को प्राप्त होता है।
4. जो सात्विक यजमान होता है उसके गृह में किसी प्रकार का आडम्बर नहीं होता। वहाँ अच्छाइयों का और ज्ञान का खण्डन नहीं होता।
5. प्रत्येक इन्द्रिय को ब्रह्ममय मानकर, विषयों की सामग्री बनाकर, मन और प्राण दोनों की समिधा बनाकर, ब्रह्म विचार नामक यज्ञ करो।
6. ब्राह्मणों तुम लोगों के अज्ञान को नष्ट करने के लिए भ्रमण करो।
7. यजमान! होता यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व कम से कम एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करें।
8. यजमान के गृह के अन्धकार (अज्ञान का रूढ़िवाद) से ब्रह्मरस और वेद का अपमान होता है।
9. ब्रह्मण केवल अपने स्वार्थ और उदर की पूर्ति मात्र से ही जीवन में अन्धकार ताता रहता है।
10. पवित्र विचारों के साथ यज्ञ करने पर यज्ञ सफल होता है।
11. सबसे पूर्व विचारों का यज्ञ करने के पश्चात् जब कर्मकाण्ड होकर यज्ञ किया जाएगा तो वे कामनाएँ सफल होगीं।
12. यज्ञशालाएँ अनेक कोणों की बनाई जाती थी यज्ञों द्वारा वृष्टि होती थी और रोगों का निवारण होता था।
13. आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र में स्थित करके लोक-लोकान्तरों का भ्रमण करने वाले बनो।

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

*1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	80.00
*2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	80.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	60.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	60.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	60.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	80.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	35.00
9.	धर्म का मर्म	40.00
10.	शंका-निवारण	30.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	35.00
*13.	देवपूजा	50.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	125.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	125.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	125.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	30.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	50.00
22.	महाराजा-रघु का याग	30.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	35.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	35.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	35.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	35.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	35.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	40.00
29.	याग-मन्जूषा	40.00
30.	आत्म-दर्शन	30.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	30.00
32.	याग और तपस्या	60.00
33.	यागमयी-साधना	35.00
34.	यागमयी-सृष्टि	35.00
35.	याग-चयन	40.00
36.	दिव्य-रामकथा	120.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	35.00
38.	दिव्य-ज्ञान	40.00
*39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	90.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	40.00
41.	आत्म-उत्थान	40.00
42.	तप का महत्व	40.00
43.	अध्यात्मवाद	40.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	40.00
45.	वैदिक-प्रभा	35.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	40.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	35.00
50.	आत्मा का भोजन	40.00
51.	साधना	35.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	80.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
*56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	80.00
57.	माता मदालसा	50.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	80.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	80.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	80.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
62.	यौगिक प्रवचन माला भाग-11	80.00
*63.	यौगिक प्रवचन माला भाग-12	80.00
64.	मानव कल्याण की चर्चाएं	50.00
65.	प्रभु-दर्शन	50.00
*66.	यौगिक प्रवचन माला भाग-13	80.00
67.	समाज उत्थान का मार्ग	50.00
*68.	यौगिक प्रवचन माला भाग-14	80.00
*69.	ब्रह्म की ओर	50.00
70.	ईश्वर मिलन	50.00
71.	यौगिक प्रवचन माला भाग-15	80.00

*सहजिल्द का मूल्य 20 रु. अतिरिक्त है।

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य सँहिता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध हैः—

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जिला—बागपत, (उ.प्र.)। मोबाइल नं 09719622950
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)। मोबाइल नं. 09412888050
3. सुश्री. नीरू अबरोल, के-3 लाजपत नगर-3, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव नई दिल्ली-110017 दूरभाष नं. 011-41030481
5. श्री जितेन्द्र चौधरी, ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मो. नं. 9811707343
6. श्री अनिल त्यागी, सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-4165802
7. श्री आशीष त्यागी, डी-293, रामप्रस्थ, पोस्ट ऑफिस चन्द्रनगर, गाजियाबाद पिन कोड-201011 (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-2642052
8. श्री लोमश त्यागी, 106/4 पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09410452076
9. श्री विवेक त्यागी, 16ए, अशोक कॉलोनी, अल्कापुरी, हापुड़, (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0122-2316196
10. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। मोबाइल नं. 09910589486
11. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110—मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 9899228860, 9871367937
12. पवन त्यागी सुपुत्र श्री राजाराम त्यागी, मौ. खड़खड़ियान, माता, ग्राम खरखौदा, जिला मेरठ (उ.प्र.) मोबाइल नं. 7536097171
13. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23282088
14. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे.पी. नगर (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09412139333
15. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09313530505
16. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
17. मैं. विजय कुमार, गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23977216

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद, हरियाणा	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
मा. कार्तिक त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
मा. लोमश त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव चावला, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्री राकेश शर्मा, विराट नगर, पानीपत, हरियाणा	250 रुपये
श्री कृष्ण लाल बत्रा, इन्द्री, जिला करनाल	201 रुपये
मास्टर कवन्धि, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	101 रुपये
मास्टर सिद्धार्थ, अँकुर अपार्टमैन्ट, दिल्ली	101 रुपये
मास्टर अभ्युदय त्यागी, न्यू जर्सी, अमेरिका	101 रुपये

नम्र-निवेदन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज ने अपने प्रवचनों में वेदमन्त्रों का गान करते हुए उनकी प्रचलित भाषा में व्याख्या की है। उसी अमृत वाणी को जनकल्याण के लिए ''सँहिता'' के रूप में प्रकाशित करने के लिए वैदिक अनुसन्धान समिति सभी श्रद्धालु एवम् दानदाताओं से सहयोग के लिए आह्वान करती है जिससे कि प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता रहे। सहयोग की राशि समिति के बैंक खाते में स्वेच्छानुसार भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्न प्रकार से है :-

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

पंजाब नैशनल बैंक, खान मार्केट, नई दिल्ली

बैंक खाता नं. - 0149000100229389, IFSC Code – PUNB–0014900

website : www.shringirishi.in

Email : contact@shringirishi.in